शोध मंथन Vol. XIII No.II Apr.-June 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.783 (SJIF)

उत्तराखण्ड में आपदाएं एवं इनके प्रबन्धन के उपाय

प्राप्तिः 24.05.2022
स्वीकृतः 06.06.2022

43

डा० सिराज अहमद
असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
गोपाल बाबू गोस्वामी, राजकीय महाविद्यालय
चौखुटिया, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)
ईमेलः *amansirajahmad@gmail.com*

साराँश

उत्तराखण्ड राज्य पिछले कुछ दशकों से विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित हो रहा है। इस तरह की घटनाएं मानव नियंत्रण से परे हैं, लेकिन इतना अवश्य है कि बेहतर नियोजन एवं प्रबन्धन के द्वारा इन आपदाओं से होने वाली हानियों को कम किया जा सकता है। पिछले कुछ दशकों से यहाँ विकास, प्राकृतिक नियमों एवं वैज्ञानिक तथ्यों की अनदेखी करके किया गया है। आपदाग्रस्त क्षेत्रों में भी मानव ने बस्तियाँ बनायी हैं। आज हम प्रकृति के साथ नहीं बल्कि उसकी कीमत पर विकास कर रहे हैं। अगर उत्तराखण्ड में वन नाशन न हुआ होता, भूस्खलन के क्षेत्र में मकान न बने होते एवं नदी के घर में बस्तियाँ न बनी होती तो सम्भवतः जीवन एवं सम्पदा की उतनी बर्बादी नहीं होती, जितनी अभी हुई है। यदि हम प्रकृति का सृजन नहीं कर सकते तो हमें उसका विध्वंस भी नहीं करना चाहिए।

मुख्य बिन्दु

प्राकृतिक आपदा, आपदा प्रबन्धन, अनुचित छेड़–छाड़, भूगर्भीय हलचलें, जन जागरुकता।

प्रस्तावना

ऐसी परिस्थितियाँ जो व्यापक स्तर पर भयावह परिस्थितियों का सृजन करती हैं, आपदा की श्रेणी में सम्मिलित की जाती हैं। आपदाएं कुछ तो स्वयं और कुछ मानवकृत व्यवस्थाओं का परिणाम होती हैं। आपदाओं से निवारण के लिए किए जाने वाले आवश्यक कार्य आपदा प्रबन्धन कहलाते हैं। इन प्रकृतिजन्य अथवा मानव जनित अप्रत्याशित एवं दुष्प्रभाव वाली चरम घटनाओं या प्रकोपों द्वारा मानव समाज, जन्तु जगत एवं पादप समुदाय को अपार क्षति होती है। आपदाएं त्वरित गति में घटित होती हैं। प्राकृतिक आपदाओं के अन्तर्गत भूकम्प, सुनामी, बाढ़, सूखा, भूस्खलन, तुषार, पाला संकट, हिमनद एवं झीलों का टूटना, ज्वालामुखी उद्‌गार, मलबा प्रवाह, वनाग्नि, बादल फटना एवं हिमस्खलन को वर्गीकृत किया जाता है जबकि मानवजनित आपदाओं के अन्तर्गत नाभिकीय विस्फोट तथा इसका प्रकोप, जहरीली गैसों का रिसाव, नाभिकीय युद्ध, आग लगना, सड़क दुर्घटनाएं, नाव पलटने, जंगली पशुओं द्वारा व्यक्तियों पर जानलेवा हमलों के कारण घायल एवं मृत्यु होने जैसी घटनाओं को सम्मिलित किया जाता है। आपदाओं के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव होते हैं। प्रत्यक्ष प्रभाव वे हैं जो घटना के तत्काल बाद

दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे मृत्यु एवं सम्पत्ति की हानि। अप्रत्यक्ष प्रभाव बहुत बाद में प्रकट होते हैं। वे उस क्षेत्र की सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं को प्रभावित करते हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं सार्थकता

उत्तराखण्ड राज्य की आपदाओं के बारे में अभी तक कोई विस्तृत संदर्भित पुस्तक न होने, विशेष रुप से हिन्दी माध्यम में, इस अध्ययन की अत्यधिक प्रासंगिकता है। इस अध्ययन से आपदाओं तथा उनके निवारण के उपायों के विषय में जानकारी प्राप्त होगी तथा प्राप्त जानकारियों को कार्य योजनाओं का निमार्ण करने में प्रयोग किया जा सकेगा। अतः वर्तमान अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता एवं सार्थकता है।

शोध प्रविधि

विधितन्त्रीय व्यवस्था में आँकड़ों का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान अध्ययन में आनुभविक, विवरणात्मक, विवेचनात्मक, साक्षात्कार, अवलोकन तथा मौखिक प्रश्नावली के आधार पर विवेचन का प्रयास किया गया है। उत्तराखण्ड में पूर्व में आयी आपदाओं वाले क्षेत्रों के निवासियों से उनके अनुभवों को जानने का प्रयास किया गया। सम्बन्धित सूचनाओं का संचय प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों से किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

इस अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित रूप में निर्धारित हैं–

1– उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में विभिन्न आपदाओं की पहचान, उनकी उत्पत्ति के कारण एवं उनका श्रेणीकरण।

2– आपदाओं के कारण उत्तराखण्ड एवं इसके जैसे अन्य पर्वतीय क्षेत्रों के मानवों के भौतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक जीवन एवं रहन सहन तथा पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन।

3– आपदाओं के न्यूनीकरण एवं नाश हेतु उपायों की समीक्षा।

4– विभिन्न सरकारों, प्रशासनिक, सामाजिक एवं स्वयंसेवी संस्थाओं की इसके प्रबन्धन, न्यूनीकरण एवं समाप्त करने में योगदान की समीक्षा।

उत्तराखण्ड में आपदाओं की स्थिति, विवेचन एवं प्रबन्धन के उपाय

उत्तराखण्ड की दृष्टि से देखें तो हिमालय हिमनदों एवं प्राकृतिक संसाधनों का बहुत बड़ा स्रोत है। भारत को आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सुरक्षा प्रदान करने वाला हिमालय पिछले कुछ दशकों से विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित हो रहा है। उदाहरणस्वरूप उत्तराखण्ड में 16 एवं 17 जून 2013 को बादल फटने से बाढ़ के रूप में आयी आपदा। त्वरित बाढ़ ने बस्तियों एवं सड़कों को बहा दिया और उत्तराखण्ड में, विशेषकर केदारनाथ क्षेत्र में ऐसा विनाश किया जैसे पहले कभी नहीं हुआ था। उत्तराखण्ड में नदियों के किनारे बसे नगर, कस्बे तथा गाँव अत्यधिक संवेदनशील हैं। यहाँ कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग, देवप्रयाग, सोनप्रयाग, विष्णुप्रयाग, नन्दप्रयाग, ऋषिकेश, उत्तरकाशी, श्रीनगर, बागेश्वर, पिथौरागढ़, हल्द्वानी, रामनगर, कोटद्वार ऐसे ही स्थान हैं, जिन्हें समय–समय पर अलकनन्दा, पिण्डर, गंगा, भागीरथी, मन्दाकिनी, नन्दाकिनी, कोसी, शारदा, काली, गौला, दाबका, खोह, मालिनी, सुखरो नदियों द्वारा बाढ़ एवं भूस्खलन के रूप में भयंकर तबाही का सामना करना पड़ता है। अत्यधिक तीव्र वर्षा, बाँधों के ढहने आदि कारणों से बाढ़ की स्थिति पैदा होती है। इसका प्रभाव विशेषकर कृषि एवं वनस्पति के साथ–साथ मानव, जीव जन्तु एवं आवासीय क्षेत्रों पर पड़ता है। इसके साथ ही मृदा अपरदन भी होता है। बाढ़ से दुर्लभ वन सम्पदा बर्बाद हो जाती है। बाढ़ के

द्वारा भूभाग दलदल बन जाता हैं। बाढ़ के कारणों में वनों की कटाई भी प्रमुख है। बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप कृषि भूमि का अभाव हो रहा है, जिससे मानव वनों को कृषि भूमि के रूप में प्रयोग कर रहा है। इसके साथ–साथ मनुष्य घरेलू एवं व्यावसायिक कार्यों के लिए लकड़ी के प्रयोग हेतु वनों को काटता जा रहा है, जिससे पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है तथा मानसून प्रभावित होने के साथ–साथ भू क्षरण एवं नदियों के द्वारा कटाव किये जाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। अत्यधिक शहरीकरण भी इसके लिए उत्तरदायी है। नदियों का वक्राकार एवं घुमावदार होना भी बाढ़ का एक मुख्य कारण है। ये मोड़ स्वाभाविक जल प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करते हैं। अति वृष्टि के समय जल नदी के किनारे से ऊपर चढ़ने लगता है और बाढ़ का रूप धारण कर लेता है।

नदियों के किनारे बसे नगरों, कस्बों एवं ग्रामों को बाढ़ की विभीषिका से बचाने के लिए तटबन्धों का निर्माण कराया जाना चाहिए। नालों के निचले स्थानों पर लोगों के निवास पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। बाढ़ से घिरे लोगों को यथा शीघ्र निकालने, उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुचाकर राहत सामग्री उपलब्ध कराने की व्यवस्था युद्धस्तर पर की जानी चाहिए। बाढ़ के बाद महामारियों को रोकने के उचित प्रबन्ध किये जाने चाहिए। उपग्रह के माध्यम से प्राप्त जानकारियों का प्रयोग करके क्षेत्र विशेष में सम्भावित भारी वर्षा तथा बाढ़ की चेतावनी दी जानी चाहिए। इस कार्य हेतु मौसम विज्ञान विभाग, केन्द्रीय जल आयोग, आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा दूरसंचार विभाग के बीच उच्चस्तरीय समन्वय होना चाहिए, ताकि लोगों को अग्रिम चेतावनी देकर उन्हें सुरक्षित स्थानों पर भेजा जा सके। व्यापक वृक्षारोपण और सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के द्वारा वनों का विस्तार करके बाढ़ों को नियंत्रित किया जा सकता है। बाढ़ नियन्त्रण के लिए अल्पकालिक, दीर्घकालिक तथा तात्कालिक योजनाओं का निर्माण करना आवश्यक है।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाओं का आना नई बात नहीं है, लेकिन पहले ये आपदाएं जन–धन को बहुत अधिक हानि नहीं पहुचाती थीं, पर अब ये उत्तराखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों, विशेषकर उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में कहर बरपा रही हैं। हाल के 10–12 वर्षों में बादल फटने की घटनाओं ने यहाँ अधिक तबाही मचाई है। हिमालय पर्वत श्रंखलाओं के नीचे थ्रस्ट अधिक सक्रिय होने के कारण यहाँ भूगर्भीय हलचलें भी अधिक होती रहती हैं।

हिमालय अभी अपने शैशवकाल, उत्थान तथा निर्माण की अवस्था में है। अतः यह क्षेत्र भूकम्पीय तथा भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं की दृष्टि से दुनिया के सर्वाधिक संवेदनशील स्थानों में सम्मिलित है। भूकम्प ऐसी प्राकृतिक आपदा है जिसका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है। इसी लिए यह मानव के लिए अत्यन्त घातक है। कमजोर शैल प्रदेशों में भूकम्पों द्वारा स्पष्ट परिवर्तन देखने को मिलते हैं जैसे दरारों का पड़ना, भूमि का फटना, नीचे धंसना, भवनों का धराशायी होना, पुलों और बाँधों का टूटना, रेलवे लाइनों का मुड़ जाना, आग लगना सामान्य घटनाएं हैं। वैसे तो भूकम्प एक प्राकृतिक आपदा है, परन्तु कभी कभी बड़े बाँधों के निर्माण से उत्पन्न असन्तुलन भी इसका कारण बनता है। इसके द्वारा नदियों के मार्ग बदल जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप भीषण बाढ़ का भय बना रहता है। इसके साथ–साथ वनस्पति की भी हानि होती है। भूकम्प के कारण बड़ी–बड़ी शिलाएं खिसक कर पर्वतों के ढाल के सहारे ऊपर से नीचे लुढ़क पड़ती हैं। ढालों पर पड़ा शैल मलबा चलायमान होकर नीचे को प्रवाहित होने लगता है जिससे इसके मार्ग में पड़ने वाले गाँव के गाँव बंजर हो जाते हैं। कई भागों में भूकम्प के कारण धरातल फटने से भ्रंश घाटी का सृजन हो जाता है। हिमालय क्षेत्र में प्रायः 5 से 7 तीव्रता के भूकम्प आते रहते हैं। इन छोटे–बड़े भूकम्पों से

हिमालय की संवेदनशील पहाड़ियाँ जर्जर हो जाती हैं, जिससे यहाँ वर्षा ऋतु के समय बादल फटने जैसी स्थितियों में व्यापक मात्रा में भूस्खलन तथा बाढ़ जैसी समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में नदी के आस–पास के क्षेत्रों में ऊँचे–ऊँचे भवनों का निर्माण अत्यधिक खतरनाक है। केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री एवं यमुनोत्री के आस–पास बड़े–बड़े भवनों का निर्माण पर्यावरणीय मानकों को ताक पर रखकर किया गया है। जबकि इनमें से कई भाग नेशनल पार्कों एवं वन्य जीव अभ्यारण्यों, नंदा देवी बायोस्फीयर तथा फूलों की घाटी में शामिल हैं। विकास के नाम पर पर्वतीय क्षेत्रों की पारंम्परिक विरासत पर जिस तरह से मानवीय हस्तक्षेप बढ़ रहा है, वह इस क्षेत्र को धीरे–धीरे बारूद के ढेर पर ले जा रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में बहुमंजिला मकानों को बनाने से रोकना, उनके डिजाईन व उनके निर्माण में प्रयुक्त पदार्थों का विशेष ध्यान रखना होगा। भूकम्परोधी तकनीक अपनानी होगी। विशेष रूप से स्कूलों एवं अस्पतालों के निमार्ण हेतु सरकार को इस दिशा में कठोर कदम उठाने चाहिए। बड़े–बड़े भवनों की नींव गहरी और सुदृढ़ होनी चाहिए। भवनों का डिजाईन सीधा व आसान होना चाहिए। सृजन में उत्तम प्रकार का मसाला लगाना चाहिए। इस्पात व कंकरीट का अच्छा प्रयोग होना चाहिए। बड़े भवनों की दीवारें मोटी होनी चाहिए। उनमें खिड़की एवं दरवाजे कम से कम होने चाहिए, क्योंकि इनसे दीवारों की सुदृढ़ता कम हो जाती है। भवनों की छतें हल्की होने के साथ–साथ सुदृढ़ होनी चाहिए। इनमें टाइल्स के बदले स्लेट का प्रयोग लाभप्रद रहता है। ऐसे क्षेत्र जिनकी भूकंप तीव्रता 6–7 से ज्यादा है, भवनों के सृजन में विशेष सतर्कता बरतनी आवश्यक है। भवन निर्माण में इंजीनियर एवं आर्किटेक्ट की सलाह एवं निर्देशन आवश्यक होना चाहिए। भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों में बांध निर्माण या खनन का कार्य नहीं करना चाहिए।

उत्तराखण्ड में भूस्खलन भी एक महत्वपूर्ण घटना है। भूस्खलन शैल खंडों का गुरूत्वीय संचलन है जो निम्नवर्ती ढाल की तरफ क्रियाशील होता है। यह नवीन पर्वतीय प्रदेशों में अधिक होता है। इसको गतिशील करने में भारी वर्षा व भूकम्प जैसे प्राकृतिक कारकों की प्रमुख भूमिका होती है। मानवीय हस्तक्षेप को भी इसके लिए उत्तरदायी माना जाता है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी की आन्तरिक हलचल, भू सन्तुलन का बिगड़ना, जल द्वारा आन्तरिक भूमि का कटाव, भूमिगत जल के द्वारा भूमि को खोखला कर देना, खनन व वन विनाश भी इसके लिए जिम्मेदार होता है। इसमें शैल स्खलन महत्वपूर्ण है। इसमें पहाड़ी भागों पर ढाल के अनुरूप बड़े–बड़े शिलाखण्ड अपने स्थान से खिसक जाते हैं। जो नीचे की ओर गिरकर छोटे टुकड़ों में बदलकर शैल चूर्ण बन जाते हैं, पहाड़ों पर हिम के पिघलते समय यह क्रिया अधिक होती है। सन् 1884 में नैनीताल के समीप मल्लीताल में स्थित नैनी झील के उत्तरी भाग में बड़ी मात्रा में शैल स्खलन हुआ, जिससे इस झील का उत्तरी पश्चिमी भाग शैल मलबे से भर गया था। पहाड़ी ढलानों पर कंक्रीट के खण्ड बनाकर, सतही एवं भूमिगत जल की उचित निकासी करके, तार और पत्थरों द्वारा अपरदन और स्खलन को कम किया जा सकता है।

प्रकृति अपने आप में संतुलन तथा व्यवस्था का अनुपम नमूना है। पहले उत्तराखण्ड के मध्य तथा उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पेड़–पौधों तथा वनस्पति की हरी–भरी प्रजातियों की ऐसी चादर फैली हुई रहती थी, जो न सिर्फ यहाँ की जलवायु को शुद्ध बनाती थी बल्कि इन वनस्पतियों की जड़ें वर्षा ऋतु में भी मिट्टी को बाँधे रखती थी। मध्य हिमालयी क्षेत्रों में लगभग 1500 से 3500 मीटर की ऊचाई तक बाँज, बुराँश, देवदार, थुनेर, खर्स, मोरू, भोजपत्र जैसे कई प्रकार के वृक्षों की बहुतायत थी। जिनकी मजबूत जड़ें मिट्टी को भूस्खलन तथा बाढ़ से बचाए रखती थी तथा इसके मध्यम आकार की मजबूत

पत्तियां जमीन में गिर कर चादर बनाती हुई बारिश के पानी की भी निकासी सुनिश्चित करती थी। हिमालय की ये वनस्पतियाँ काफी हद तक हिमालय की जलवायु, मौसम, तापमान, जैव विविधता तथा पारिस्थितिकी तंत्र को भी संतुलित बनाएं रखने में मदद पहुचाँती थी। किन्तु वर्तमान में पारम्परिक जंगलों का विनाश शुरू हो गया है। दूसरा उत्तराखण्ड में पर्यटकों की आवक बढ़ने के साथ–साथ अनियोजित विकास की जो आँधी बही, वह हिमालयी क्षेत्र के पर्यावरण के लिए नुकसानदेह साबित हुई।

पर्यटन उद्योग के कारण भी पर्वतीय क्षेत्रों के पर्यावरणीय हितों को बेहद अधिक नुकसान पहुँचा है, इसलिए बहुत सोच–समझकर पर्यटन नीति बनाई जानी चाहिए, जो यहाँ के पर्यावरणीय एवं भौगोलिक हितों के अनुकूल हो। स्वस्थ पर्यटन तथा इको टूरिज्म की संकल्पना को मजबूत किया जाना चाहिए। पर्यटकों, तीर्थयात्रियों तथा स्थानीय लोगों, सभी के लिए पर्यावरणीय मानकों का पालन अनिवार्य करने के लिए कानूनी प्रावधान बनाए जाने चाहिए। पॉलीथीन तथा नॉन बायोडीग्रेडेबल कचरा हिमालय क्षेत्र के पर्यावरण के लिए लंबे समय से मुसीबत का पर्याय बना हुआ है। सरकार को चाहिए कि वह इसके निस्तारण की उचित व्यवस्था करें, या इसके प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाये।

पर्यावरण मानकों के प्रति जागरुकता फैलाने के लिए पोस्टरों, होर्डिंग्स, रैलियों, सेमिनार, कार्यशालाओं तथा प्रिंट व इलेक्ट्रानिक मीडिया का भी सहारा लिया जा सकता है। उत्तराखण्ड में बड़ी जल विद्युत परियोजनाओं के बजाय छोटी–छोटी जल विद्युत परियोजनाओं को प्रारंम्भ करना चाहिए। मौसम के पूर्वानुमान के लिए मौसम प्रणाली को भी हाईटेक करना जरूरी है। अति संवेदनशील क्षेत्रों में सड़क परिवहन के बजाय रज्जु मार्गों, रोपवे एवं ट्रालियों की सहायता से आवागमन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में प्रदूषण फैलाने वाली औद्योगिक इकाईयों अथवा बड़ी परियोजनाओं के बजाय यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकास करना चाहिए। बागवानी, फल एवं सब्जी उत्पादन, फ्लोरीकल्चर, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, जड़ी–बूटी उत्पादन, पहाड़ी मोटे अनाजों का उत्पादन, आयुर्वेदिक दवाईयां बनाना, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग (जूस, जेली, स्कवेश, अचार, नमकीन, चिप्स, अर्क, इत्र) इत्यादि का उत्पादन, हथकरघा उद्योग (रूई व ऊन की कताई तथा उससे निर्मित कपड़े, दरियां, गलीचे) इत्यादि तथा पशुपालन पर आधारित उद्योग (भेड़ पालन, बकरी पालन, तथा दुग्ध उत्पादन) यहाँ की पर्यावरणीय व भोगौलिक परिस्थितियों के बेहद अनुकूल है। इससे क्षेत्र के प्रत्येक व्यक्ति को स्थाई रोजगार भी प्राप्त होगा और समग्र सामाजिक–आर्थिक विकास भी सुनिश्चित हो पाएगा।

उत्तराखण्ड में यातायात एवं आवागमन की नीतियों एवं नियमों को कठोर बनाना होगा। केवल कर के रूप में राजस्व की प्राप्ति हेतु नियमों में ढिलाई देकर यातायात वाहनों को क्षमता से अधिक पर्वतीय क्षेत्रों में जाने की अनुमति न दी जाये। होटल, लॉज, रेस्टोरेन्टों के लिए भी कठोर नीति बने तथा उनमें सुरक्षा के उपाय उचित रूप में हों। सड़कों का निर्माण, सुदृढ़ीकरण एवं मरम्मत समय–समय पर की जाये। क्योंकि उत्तराखण्ड में सड़क दुर्घटनाएं भी आपदाओं के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। स्थानीय निवासियों द्वारा जंगलों में आग लगाने की घटनाओं को कठोरता से रोकना होगा। नदियों के किनारे आवास बनाने और संवेदनशील स्थानों पर बहुमंजिला ईमारतों को बनाने से कठोरता पूर्वक रोक लगानी होगी। जंगली एवं वन क्षेत्रों में भी आवास एवं होटल निर्माण पर कठोरता से रोक लगानी होगी। संरक्षित वनों में जो कि जंगली जानवरों के आवास हैं, मानव के हस्तक्षेप को रोकना होगा एवं उन क्षेत्रों में आवाजाही प्रतिबन्धित करनी होगी। पर्वतीय क्षेत्रों में

अत्यधिक एवं अनियंत्रित पशु चराई को नियंत्रित और सीमित करना होगा। संवेदनशील चट्टानों के क्षेत्र में सड़क एवं भवन निर्माण हेतु किये जाने वाले विस्फोटों को रोकना होगा।

आपदाग्रस्त क्षेत्रों के निवासियों को स्थानीय प्रशासन द्वारा आपदाओं के खतरों और उनसे बचाव के तरीकों से अवगत कराया जाना चाहिए। प्रशासन इस हेतु SDRF, NDRF तथा आपदा प्रबन्धन में प्रशिक्षित विशेषज्ञों द्वारा कार्यशालाओं का आयोजन करा सकता है। कानूनी नियमों और अधिनियमों का कठोरता और ईमानदारी से पालन कराना होगा। स्कूल, कालेजों के पाठ्यक्रमों में आपदा प्रबन्धन को सम्मिलित करना इस ओर श्रेयस्कर कदम होगा। इसमें यह भी आवश्यक है कि इस पाठ्यक्रम में व्यावहारिक तथा प्रशिक्षण पक्ष को भी सम्मिलित करना आवश्यक होगा। उत्तराखण्ड जैसे संवेदनशील राज्य के लिए विशेषज्ञ समितियों का गठन करना होगा। जिसमें मौसम, जलवायु, अग्निशमन, जल विभागों के अतिरिक्त स्थानीय प्रशासन, तथा सेनाओं के अधिकारियों को प्रतिनिधि रूप में सम्मिलित किया जाना हितकारी होगा। प्रायः देखा गया है कि पर्वतीय क्षेत्रों में आपदाओं के समय सेना का बहुत ही सराहनीय योगदान रहा है। उत्तराखण्ड में स्वयंसेवी संगठनों की महती भूमिका है, लेकिन उनकी लगातार निगरानी आवश्यक है क्योंकि विभिन्न आपदाओं के समय स्वयंसेवी संगठन केवल कागज पर ही दिखाई दिए धरातल पर नहीं। पर्यावरण संरक्षण में विभिन्न अभिकरणों की भूमिका को उत्तरदायी बनाया जाये।

आपदा नियंत्रण हेतु सरकारें विभिन्न मन्त्रालयों, प्रशिक्षण संस्थानों, स्वायत्तशासी संगठनों और शिक्षण तथा प्रशिक्षण संस्थानों के साथ मिलकर प्रशिक्षण, कार्यशालाएँ, सेमिनार और अनुसंधान जैसी गतिविधियाँ आयोजित कर सकती हैं। आपदाओं के नियंत्रण हेतु सूचना प्रौद्योगिकी को सुदृढ़ करना होगा। इसमें सुदूर संवेदन प्रणाली, भौगोलिक सूचना विज्ञान (जी0आई0एस0), कम्प्यूटर मॉडलिंग तथा ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जी0पी0एस0) का प्रयोग उत्तम होगा। अन्तरिक्ष तकनीकी का प्रयोग करके भी विभिन्न आपदाओं की निगरानी की जा सकती है।

निष्कर्ष

प्राकृतिक आपदा न केवल मानव के आर्थिक विकास को अवरूद्ध करती है, बल्कि मानव के अस्तित्व को भी खतरे में डालती है। अतः इस हेतु हमें अंधाधुंध विकास के स्थान पर सतत् विकास की आवश्यकता है। उत्तराखण्ड में पर्यावरण तथा विकास को समन्वित रूप से एक दूसरे के पूरक के रूप में आगे बढ़ाना पड़ेगा। पर्यावरण एवं विकास से सम्बन्धित ऐसी नीतियाँ बनानी पड़ेगीं जो यहाँ की भौगोलिक स्थिति, पारिस्थितिकी तथा जैव–विविधता के अनुकूल हो। इस हेतु उचित प्रबंधन करना होगा। प्रकृति में अनुचित छेड़–छाड़ के बजाय उसके संरक्षण तथा संवर्धन के उपाय करने होंगे। यदि किसी कारणवश हम आपदाओं को रोक नहीं सकते हैं तो व्यवस्थित विकास और नीतियों को व्यवहार में लाकर उनकी घातकता एवं प्रभाव को कम किया जा सके, ऐसे प्रयास करने होंगे। इस हेतु हमें अर्न्तविषयक पहल एवं प्रयास तथा अर्न्तविभागीय भागीदारी के साथ–साथ शासकीय और स्वयंसेवी संस्थाओं का समन्वय बनाना होगा। इसके लिये आपदा प्रबंधन विभाग के साथ–साथ प्रत्येक नागरिक और सरकारों को सजग एवं सचेत रहना होगा। हमारे कार्यकलापों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव हमारे पर्यावरण पर पड़ता है। हम सबको अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सजग होना और संसाधनों के उपयोग का ढंग बदलना होगा। हमें अपनी ऐसी जीवन शैली अपनानी चाहिए जो निर्वहनीय हो तथा पर्यावरण को सहारा दे सके। इसके लिए जो जन–जागरूकता आवश्यक है, वह

समाचार पत्रों, रेडियो, टेलीविजन, मोबाईल जैसे जनसंचार माध्यमों के द्वारा दी जा सकती है। वन संरक्षण तथा पर्यावरण स्नेही वस्तुओं का उपयोग उत्तम होगा। आपदा न्यूनीकरण के लिए स्थानीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक और अर्न्तराष्ट्रीय स्तरों पर कार्य दल और क्रियाओं को लागू करना होगा।

सन्दर्भ

1. कुमार, अरविन्द. (2010). "आपदा प्रबन्धन". यूनिवर्सिटी पब्लिकेशनः नई दिल्ली. ISBN-978-81-7555-307-1. Pg. **300.**
2. कुमार, अरविन्द. (2009). "ग्लोबल वार्मिंग". यूनिवर्सिटी पब्लिकेशनः नई दिल्ली. ISBN-978-81-7555-242-5. Pg. **256.**
3. भरूचा, इराक. (2016). "पर्यावरण अध्ययन". द्वितीय संस्करण, ओरियन्ट ब्लेकस्वॉन प्रा0लि0 आसफ अली रोडः नई दिल्ली. ISBN-978-81-250-5751-2. Pg. **304.**
4. मामोरिया, डा० चतुर्भुज., सिसौदिया, डा० एम०एस०. "पर्यावरण एवं विकास"–एस०बी०पी०डी० पब्लिकेशनः आगरा. ISBN-978-93-5167-262-3. Pg. **328.**
5. मैठाणी, प्रो० डी०डी०., प्रसाद, डा० गायत्री., नौटियाल, डा० राजेश. (2010). "उत्तराखण्ड का भूगोल." शारदा पुस्तक भवनः इलाहाबाद. ISBN-978-93-80285-23-8. Pg. **287.**
6. उपाध्याय, विनोद. (2011). "पृथ्वी की आन्तरिक संरचना एवं भूसंचलन." वंदना पब्लिकेशन्सः नई दिल्ली. ISBN- 978-81-89949-31-0. Pg. **243.**
7. गुप्ता, संजय कुमार. (2014). "पर्यावरण अध्ययन एवं आपदा प्रबंधन." वायु एजुकेशन ऑफ इण्डियाः नई दिल्ली. ISBN- 978-93-83758-65-4. Pg. **298.**
8. गर्ग, डा० एच०एस०. (2022). "आपदा प्रबंधन." एस०बी०पी०डी० पब्लिकेशन्सः आगरा. ISBN-978-93-5167-664-5. Pg. **128.**
9. पांचाल, के०के०. (2007). "प्राकृतिक आपदा." डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली।
10. Arthur, L. Bloom. (2012). "Geomorphology" A systematic Analysis of Late cenozoic Landforms. 3rd edition. Rawat Publications: New Delhi. ISBN- 978-81-316-0473-1. Pg. **482.**
11. Dhawan, Nidhi Gauba., Khan, Ambrina Sardar. (2022). "Disaster Management and Preparedness." CBS Publishers & Distributors: New Delhi. ISBN-978-81-239-2380-2. Pg. **156.**
12. Wright, R. G. (1995). "National Parks and Protected Areas: Their Role in Environmental Protection". Blackwell Publishing Vincent Hegarty AACC Press:
13. Singh, Savindra. (2017). "Geomorphology". Pravalika Publications: Allahabad. ISBN-978-81-928297-8-4. Pg. **652.**
14. (2009-2012). "Disaster Management in India" Ministry of Home Affairs. Govt. of India. UNDP Disaster Risk Reduction Prog. Pg. **233.**
15. (2002). "Disaster Reduction for Sustainable Mountain Development". United Nations World Disaster Reduction compaign. International Strategy for Disaster Reduction (ISDR).